गाथा १२४, फिर से।

केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को... अर्थात् कि बाह्य की क्रिया करे, स्त्री, पुत्र, परिवार छोड़े और नग्नपना धारण करे, बाईस परीषह सहन करे, पाँच महाव्रत पालन करे, तथापि वह द्रव्यलिंगी है। जिसे अन्तर भगवान आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं हुई... आहाहा! कहा है न यह? अन्दर वस्तु जो चैतन्यस्वरूप, ज्ञान और आनन्द से भरपूर प्रभु, उसकी प्राप्ति नहीं, उसे इससे कुछ भी फल नहीं। है इसका फल संसार में भटकना। भटकने का फल है। आहाहा! **केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त और महा आनन्द के हेतुभूत...** ऐसी **परमसमताभाव बिना,...** ऐसी समता चाहिए। समता की व्याख्या की है कि **कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त...** पर से नास्ति ली। अब अस्ति।

महा आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव... आहाहा! उसे समताभाव कहा। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, वह समताभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान का स्वाद आना, उसका अनुभव होना, इसका नाम समता कहते हैं। यह समता की व्याख्या है। इसे सामायिक कहते हैं। इस **परमसमताभाव बिना, (१) वनवास में बसकर...** भले वन में-जंगल में बसे। **वर्षाऋतु में वृक्ष के नीचे स्थिति करने से,...** आत्मा के अनुभव बिना, आत्मा के आनन्द के स्वाद बिना वन में रहे या चातुर्मास में वृक्ष के नीचे रहे या **ग्रीष्मऋतु में प्रचण्ड सूर्य की किरणों से संतप्त पर्वत के शिखर की शिला...** धकधकती। उस पर **ऊपर बैठने से...** यह क्या है? यह क्रियाकाण्ड है। आहाहा! **और हेमन्तऋतु में रात्रि में दिगम्बरदशा में रहने से,...** हेमन्त अर्थात् सर्दी। सर्दी में रात्रि में दिगम्बरदशा से रहे।

(२) त्वचा और अस्थिरूप (मात्र हाड़-चामरूप) हो गये... ऐसी तपस्या (की) कि मुश्किल से चमड़ी और हड्डियाँ दो रहे। ऐसी तपस्या भी निरर्थक है। आहाहा! स्व-आश्रय बिना... प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दमय यह आत्मा, इसकी सन्मुखता, इसका आश्रय, इसका अवलम्बन वर्तमान में आनन्द के अनुभव बिना ये सब क्रियाएँ निष्फल है।

उससे कोई आत्मा का कल्याण नहीं है। आहाहा! **सारे शरीर को क्लेशदायक महा उपवास से,...** उपवास करे। कैसे? - कि क्लेशदायक उपवास वापस। आनन्द तो नहीं। आत्मा का आनन्द तो नहीं, इसलिए क्लेश है, कहते हैं। आहाहा! समकित बिना के उपवास क्लेश है। आहाहा! **क्लेशदायक महा उपवास से,...** महा अर्थात् बहुत उपवास। आहाहा! **(३) सदा अध्ययनपटुता से...** शास्त्र वाचन में भी पटु अर्थात् चतुर। शास्त्र पढ़े, बहुत अध्ययन करे - उससे क्या? आहाहा! कहा, शास्त्र अध्ययन में पटुता। शास्त्र अध्ययन सदा पठन-पाठन। शास्त्र पठन करे रात-दिन। आहाहा! यहाँ अपने आता है न? पहले पहर में मुनि स्वाध्याय करे, फिर ध्यान करे, फिर पिछली पहर में सहज शयन करे। रात्रि के पिछले भाग में। छहढाला में आता है न? छहढाला में आता है। पिछली रात्रि में। इससे क्या? कहते हैं। आत्मज्ञान बिना यह सब क्रिया निष्फल है, फलवाली है परन्तु संसार के। आहाहा! यह वस्तु लोगों को कठिन लगती है।

(अर्थात् सदा शास्त्रपठन करने से),... आहाहा! एक ओर कहा कि शास्त्र का अध्ययन करना, शास्त्र का अभ्यास करना। प्रवचनसार में आया न? परन्तु यह तो स्वलक्ष्य से। अपने आत्मा के ज्ञान के लक्ष्य से स्वाध्याय (करना)। यह तो अकेली आत्मा के ज्ञान बिना अकेली स्वाध्याय किया करे और माने कि इसमें से कुछ हो जाएगा। शास्त्र, वापस महा शास्त्र। **सदा शास्त्रपठन...** सदा करे। रात और दिन शास्त्र... शास्त्र। आहाहा!

(४) वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्ति... मौन धारण करे। बोलना बन्द करे। **सतत मौनव्रत से...** निरन्तर मौनव्रत धारण करे। **क्या किंचित् भी उपादेय फल है?** उससे क्या किंचित् भी फल उपादेय है? है नहीं। आहाहा! श्लोक कठिन आया। इतने अपवास करे, मौन रहे, शास्त्र पठन करे, रात-दिन शास्त्र वाँचन करे परन्तु वह तो सब परलक्ष्यी है। आहाहा! अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय शान्तस्वरूप, वह दृष्टि में, अनुभव में आये बिना यह सब क्रियाएँ संसार खाते हैं। इन क्रियाओं से आत्मा को कुछ लाभ हो, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा! यहाँ तो ऐसी स्पष्ट बात है। दुनिया को कठिन लगता है।

मुमुक्षु : संसारी की अपेक्षा अच्छे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल जरा भी अच्छे नहीं। यहाँ तो कहते हैं जैसे अनादि संसारी प्राणी है, वैसा यह है। आहाहा!

क्या किंचित् भी उपादेय फल है ? (अर्थात् मोक्ष के साधनरूप फल किंचित् भी नहीं है।) जरा भी-किंचित् कहा न ? किंचित् कहा है न ? जरा भी आत्मा में लाभ नहीं है। यह कहीं अच्छे हैं ही नहीं। सम्यग्दर्शन के बिना वह सब क्रिया संसार खाते भटकने की है। आत्मा के लिये कुछ फल नहीं है। आहाहा ! **(मोक्ष के साधनरूप फल किंचित् भी नहीं है।)** साधनरूप किंचित् साधन नहीं है। जिसे लोग साधन कहते हैं। व्रत करना, तप करना, तपस्या करना, भगवान की भक्ति करना, यह साधन और सम्यग्दर्शन साध्य। यहाँ कहते हैं, तेरे साधन का किंचित् फल नहीं है। आहाहा ! सम्यग्दर्शन तो पर की अपेक्षा बिना निरपेक्ष भगवान आत्मा का अवलम्बन करने पर अनुभव हो, वह सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन है। पर के कारण कुछ नहीं कि पर की क्रिया इतनी की तो कुछ मदद मिली। बहुत तपस्या की, शास्त्र अध्ययन बहुत किया तो समकित प्राप्त होने में मदद मिली, ऐसा नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के हेतु से क्रिया की।

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं। सम्यग्दर्शन के हेतु से क्रिया करे तो भी सम्यग्दर्शन नहीं है। वह तो राग है। राग है, वह सम्यग्दर्शन-वीतरागता का हेतु होगा ? कठिन बात है, बापू ! सम्यग्दर्शन ऐसी चीज़ है। क्या हो ? किसे कहना ? अभी सब फेरफार हो गया। आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्दरस सागर को कोई इस क्रियाकाण्ड के कारण से कुछ भी लाभ नहीं है। यह क्रियाकाण्ड तो अनन्त बार किया है। आहाहा !

मुमुक्षु : द्रव्य क्रिया करते-करते भाव आवे, ऐसा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया करते-करते भटकेगा। पुण्य बाँधेगा। मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधेगा। चार गति में भटकेगा। आहाहा ! इसमें 'छहढाला' में नहीं आया ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धारण (करके) दिगम्बर मुनि (हुआ), हों ! यह 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' यह पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले परन्तु वह सब दुःख है, राग है, दुःख है। 'आतमज्ञान बिना सुख (लेश) न पायो।' पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम, वह आस्रव और दुःख है। दुःख से आत्मा की मुक्ति होगी ? सम्यक्त्व होगा ? सम्यग्दर्शन तो आनन्दस्वरूप है। आहाहा ! बहुत अन्तर।

मुमुक्षु : करते-करते होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : करते-करते जहर होगा। यह करते-करते राग का जहर होगा। उससे अमृत सागर भगवान (प्राप्त नहीं होगा)। आहाहा! बहुत कठिन बात, भाई! मार्ग कोई ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसका फल भी अपूर्व है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपूर्व फल है, यह अलौकिक है। इससे रहित होकर अन्तर चैतन्यस्वरूप को (अवलम्ब कर)... आहाहा! विकल्प को भी छोड़ देना। मैं आत्मा हूँ, ऐसा जो विकल्प है, उसे भी छोड़ देना और स्वरूप में रहना, तब उसे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना... कहा न? ऐसी-ऐसी क्रिया करे। चमड़ी रहे और दूसरे हड्डियाँ रहे, इतनी तपस्या और अपवास करे तो भी उसका फल संसार है। एक भी भव घटे या इस क्रियाकाण्ड के कारण सम्यक्त्व के सन्मुख हो, (ऐसा तीन काल में नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु : कठिन बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन बात है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

इसी प्रकार (श्री योगीन्द्रदेवकृत) अमृताशीति में (५९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

गिरिगहनगुहाद्यारण्यशून्यप्रदेश-
स्थितिकरणनिरोधध्यानतीर्थोपसेवा।
प्रपठनजपहोमैर्ब्रह्मणो नास्ति सिद्धिः,
मृगय तदपरं त्वं भोः प्रकारं गुरुभ्यः।।

आहाहा! दिगम्बर मुनि योगीन्द्रदेव, जिन्होंने दोहा बनाये हैं। योगीन्द्रदेव ने, उसमें ऐसा कहा कि 'पाप को पाप तो सब कहे...' हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना। परन्तु 'अनुभवी जन तो पुण्य को पाप कहे।' धर्मी जीव तो पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति को पाप कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है। अभी तो पोलमपोल यह सब चला है। कोई ठिकाना नहीं होता। पंच महाव्रत का भी ठिकाना नहीं होता। उनके लिये आहार बनाकर ले, पानी (प्रासुक) करके ले, उनके लिये वस्त्र बिकते हुए ले, वह तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। धर्म तो है ही कहाँ? आहाहा! कठिन बात है, भाई!

पर्वत की गहन गुफा आदि में... कहते हैं, भले कोई पर्वत की गुफा में रहे। आहाहा! **वन के शून्य प्रदेश में रहने से,...** वन के किसी शून्य प्रदेश में अकेला रहे! **इन्द्रियनिरोध...** करे। आहाहा! पाँच इन्द्रिय का निरोध करे, वह तो शुभभाव है। धर्म नहीं, भाई! आहाहा! **ध्यान से,...** यहाँ तो ध्यान भी कहा। वह राग का शुभध्यान। मैं ध्यान करता हूँ... ध्यान करता हूँ... ऐसा विकल्प। विकल्प है। उस ध्यान से भी मुक्ति नहीं है। वह विकल्परूपी ध्यान, हों! और **तीर्थ सेवा...** तीर्थ की सेवा करना। शत्रुंजय की, गिरनार की, सम्मेदशिखर की यात्रा करना और सेवा करना, उससे कहीं मुक्ति-बुक्ति है नहीं, धर्म है नहीं। आहाहा! उससे कुछ धर्म नहीं होता।

ज्ञानी को भी अशुभ से बचने के लिये शुभभाव आते हैं, परन्तु धर्म नहीं मानते; बन्ध मानते हैं, हेय मानते हैं। आहाहा! धर्मी को भी शुभभाव तो आता है परन्तु उसे हेय जानकर उसका फल नहीं चाहते। मैं तो आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ। राग तो बन्ध का कारण जहर है। शुभराग ज्ञानी को होता है तो भी ज्ञानी तो ऐसा मानते हैं कि यह तो काला नाग है। आया है न? आहाहा!

मुमुक्षु : वचनामृत में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : काला नाग। जैसे काला नाग ऐसे जहर दिखता है, वैसे धर्मी को शुभभाव आवे, वह काला नाग जैसा दिखता है। आहाहा! बहुत कठिन बातें। यहाँ तो अभी धन्धा-पानी के कारण शुभ का ठिकाना नहीं होता। नौकरी करना या जजपना करना, वहाँ रुकना। अब उसमें निर्णय करने को निवृत्त कब हो? ऐसा आत्मा... ऐसा आत्मा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह सब... रामजीभाई के पास सलाह लेने आते थे। सब सलाह लेने आते थे। सलाह देते थे। एक महीने कैद में गये थे। लौकिक में भी एक जाति की विरुद्धता है। सलाह देना, संसार की सलाह, वह तो पाप है। किसकी सलाह देना। आहाहा! ढेबरभाई और आवे न? ढेबरभाई रामजीभाई के पास सलाह लेने जाते थे। सलाह लेने जाते थे। सलाह देते, उसके फल में एक महीने जेल में जाना पड़ा। आहाहा! यह संसार ऐसा है, भाई!

यहाँ तो निर्विकल्प आनन्द का नाथ, प्रभु! जिसमें शुभराग की गन्ध नहीं, ऐसे

अखण्डानन्द की ओर दृष्टि दिये बिना, उसके अनुभव बिना जितना क्रियाकाण्ड है, वह सब संसार है। चार गति में भटकने की बात है। आहाहा! **तीर्थ सेवा...** आहाहा! **(तीर्थस्थान में वास करने से),...** कोई कहे कि अपने बस! शत्रुंजय बड़ा तीर्थ कहलाता है, सम्मेदशिखर महातीर्थ कहलाता है, वहाँ अपन रहें तो वहाँ से मुक्ति होगी। यह लोग कहते हैं न?—कि सम्मेदशिखर में तो जो वनस्पति उगी है, वह तो मोक्षगामी है, ऐसा कहते हैं। यहाँ एक महावीरकीर्ति थे न? दिगम्बर के (साधु) यहाँ आये थे। महावीरकीर्ति, उनके साथ बात हुई। जैसे श्वेताम्बर में यह शत्रुंजय तीर्थ है न उनका?

मुमुक्षु : माहात्म्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : माहात्म्य। शत्रुंजय माहात्म्य एक (पुस्तक) है। है, सब पुस्तकें देखी है। ऐसा एक सम्मेदशिखर के माहात्म्य का पुस्तक है। तो उन्होंने कहा। यहाँ आये थे। यहाँ कमरा था, वहाँ उतरे थे। सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो अढ़तालीस भव में मोक्ष में जाए। कहा, यह वचन वीतराग का नहीं है, अज्ञानी का है। क्योंकि पर के आश्रय से भव का अभाव हो, यह तीन काल, तीन लोक में नहीं है। अढ़तालीस भव में मोक्ष जाए। फिर बदल गये। कहा फिर वह बिल्कुल झूठी बात है। यह माहात्म्य किया होगा, यह माहात्म्य झूठा है। सम्मेदशिखर का ऐसा माहात्म्य, वह तो पत्थर है। पत्थर के पास ऐसे अनन्त समवसरण में जा आया। भगवान महाविदेह में तीर्थ का विरह तो कभी नहीं। शाश्वत् तीर्थंकर होते हैं। सवमसरण में अनन्त बार गया है, शास्त्र पढ़ा है परन्तु आत्मज्ञान नहीं किया और सम्यग्दर्शन क्या, उसकी कीमत ही नहीं की। चौरासी के अवतार में भटक मरता है। आहाहा! ध्यान करने लगे तो बाहर के ध्यान करने लगे। यह करना... यह करना... अपवास करना, वाँचन करना, ध्यान करना, णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... यह ध्यान किया। ध्यान कहा है न? ध्यान। पाँच नवकार का ध्यान, वह राग है। वह धर्म का कारण नहीं। ऐसी बात! अपने तो यहाँ यह पैंतालीस वर्ष से चलता है। यह कहीं गुप्त नहीं है। आहाहा!

(तीर्थस्थान में वास करने से)... अरे! **पठन से,...** शास्त्र पढ़ा करे, पढ़ा करे, रटा करे, वह सब विकल्प-राग है। आहाहा! **पठन से, जप से...** जप किया करे। णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... आनुपूर्वी गिने। आनुपूर्वी—णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं... णमो उवज्झायाणं... णमो सिद्धाणं, णमो अरिहन्ताणं, णमो उवज्झायाणं... आनुपूर्वी आता है न? आडा-सीधा।

मुमुक्षु : अशुभ में से शुभ में तो आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभ भी संसार भटकने का। भटकने का संसार। अज्ञानी को अशुभ में से शुभ, वह संसार का भटकने का (भाव है)। ज्ञानी को अशुभ टालने के लिये शुभ आता है, सम्यग्दृष्टि को अशुभ टालने के लिये शुभ आता है। अज्ञानी को, मिथ्यादृष्टि को वह शुभ, शुभ नहीं है। वह अशुभ ही है। आहाहा! आत्मा का जरा भी लाभ नहीं है। सम्यग्दृष्टि को हेयबुद्धि है। इसलिए अशुभ से बचने के लिये शुभ आवे, तो भी वह पुण्य बाँधता है, उसे भी धर्म नहीं होता, निर्जरा नहीं होती, संवर नहीं होता। समकिती को भी भगवान की सेवा और तीर्थसेवा, पूजा और यात्रा (करने से) धर्म नहीं होता। आहाहा! कठिन काम है।

मुमुक्षु : शत्रुंजय तो नजदीक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शत्रुंजय नजदीक है। बहुत आते हैं न! शत्रुंजय के माहात्म्य में लिखा है। शत्रुंजय की यात्रा करे, फिर चाहे जिस साधु को जिमावें, तो भी उसे धर्म लाभ हो, यह सब खोटा, सब मिथ्या बात है। यहाँ तो यह भगवान तीन लोक का नाथ अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति और चैतन्य के अनन्त रत्नाकर से भरपूर प्रभु की अन्तर्दृष्टि, अनुभव बिना सब व्यर्थ है। इसके बिना संसार का एक भी भव नहीं घटता। आहाहा! यह बात है। लोगों को कहाँ निवृत्ति है? आहाहा!

पठन से, जप से... चौबीस घण्टे णमो अरिहन्ताणं के जप किया करे, माला गिना करे, भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... वह संसार है, मिथ्यात्वसहित शुभराग है। उससे धर्म मानता है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : नौ लाख नवकार मन्त्र गिने।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ लाख गिने, वह मिथ्यात्व है। लाख, करोड़ गिने नहीं। करोड़पूर्व का आयुष्य हो, तो प्रतिदिन गिने तो अरबों बार हो जाए। आहाहा! एक दिन में एक बार नवकार गिने तो कितने अरबों (हों)। उसमें क्या हुआ? भगवान आत्मा अन्दर विकल्परहित, रागरहित पूर्णानन्द का नाथ विराजमान है। उसके स्पर्श बिना, उसके अनुभव बिना सब बिना इकाई के शून्य हैं। यहाँ तो स्पष्ट बात है। यह कहाँ गुप्त है? पुस्तकें भी तीस लाख बाहर प्रकाशित हुई है और अभी पुस्तकें मुम्बई से प्रकाशित होती है न?

सात लाख की प्रकाशित करनेवाले हैं। तीस लाख तो प्रसिद्ध हो गयी है। बाईस लाख यहाँ से, आठ लाख जयपुर से और सात लाख अब मुम्बई से नयी बाहर प्रकाशित होनेवाली है। पहला एक आ गया है। दूसरे सात लाख बाहर प्रसिद्ध होनेवाले हैं। लोग तो बहुत पैसे का ढ़ेर करते हैं, जहाँ हो वहाँ। अपने आप बिना कहे और बिना बोले। आहाहा!

यह देखो न! अफ्रीका में गये, वहाँ छब्बीस दिन में तीन लाख। तीन लाख दिये। एक लाख ज्ञान खाते, और दो लाख चरण किये उसके। सोनगढ़ को तीन लाख दिये। और ९१वाँ वर्ष लगा और उसमें मुम्बई से दो लाख आये। डेढ़ महीने में पाँच लाख आये। शास्त्र की कीमत घटाने के लिये। दूसरा कुछ नहीं। दस रुपये की लागत हो तो आठ रुपये में देना, सात में देना। यह शास्त्र की कीमत घटाने के लिये सब लक्ष्मी आती है क्योंकि शास्त्र का प्रचार कैसे हो? ईसाई लोग तो एक रुपये की पुस्तक चार पैसे में देते हैं। ऐसा तो सब देखा है न? ईसाई के जो लोग आवे न, वे एक रुपये की पुस्तक चार पैसे में देते हैं। किसी प्रकार से प्रकार होवे न! हिन्दुस्तान में कितनों को ईसाई कर दिया है। खबर है न? आहाहा! यह शास्त्र का प्रचार करे, सुने-पढ़े तो उसे खबर तो पड़े कि सत्य क्या है?

यहाँ यह कहते हैं। **जप से तथा होम से...** भगवान को होम करे। स्वाहा.. स्वाहा.. भगवान की भक्ति करते हुए स्वाहा (करे) वह शुभभाव है। धर्म किंचित् नहीं है। उससे किंचित् धर्म नहीं होता। ऐसी स्वाहा अनन्त बार की है। आहाहा! **ब्रह्म की (आत्मा की) सिद्धि नहीं है;...** ब्रह्म की उपासना सिद्धि नहीं है। यह सब करने से ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा... आहाहा! उसकी उपासना, फल नहीं है। आहाहा!

इसलिए, हे भाई!... आहाहा! मुनिराज करुणा करके कहते हैं। **हे भाई! तू गुरुओं द्वारा...** जो गुरु राग से धर्म न मनावे, क्रियाकाण्ड से धर्म न मनावे, ऐसे गुरु के पास तू जा और मार्ग ग्रहण कर। यह तो सब गुरु बहुत घूमते हैं। **तू गुरुओं द्वारा...** देखो! भाषा है न? **उससे अन्य प्रकार को...** जो यह सब क्रियाएँ हैं, उनसे अन्य प्रकार से गुरु कहेंगे। वे गुरु कहलाते हैं। जो इनसे धर्म मनावे, माने, वे गुरु नहीं हैं। वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! जैनधर्म का शत्रु है। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! आहाहा! नये हों, उन्हें कठोर लगेगा।

मुमुक्षु : भगवान होना, वह कहीं खेल की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! बापू! स्वयं भगवान ही है परन्तु उसकी इसे प्रतीति कहाँ

है ? प्रतीति तो उसके सन्मुख होती है, इस क्रियाकाण्ड में धर्म कहीं नहीं है, ऐसा वहाँ से निवृत्त हो, तब आत्मा में जा सकेगा। आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति में कुछ नहीं है। यह तीर्थ की शत्रुंजय की, सम्मेदशिखर की यात्रा लाख बार करे (तो भी धर्म नहीं होता)। आहाहा!

मुमुक्षु : सोनगढ़ की करे, तब तो होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सोनगढ़ की यात्रा कहाँ है ? यहाँ सुनकर अन्दर समझे तो होता है। यहाँ आवे और पठन करे तथा सुने तो भी क्या हो गया ? सोनगढ़ आवे, इसलिए उसे समकित हो जाए, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! कहा नहीं था ? निमित्त से कुछ नहीं होता। पर में निमित्त से कुछ नहीं होता। केशवलाल। वढवाण में केशवभाई हैं। उनसे एक व्यक्ति ने कहा कि निमित्त से कुछ नहीं होता, तो तुम सोनगढ़ किसलिए जाते हो ? सोनगढ़, वह निमित्त है। प्रश्न उठे न! तब उसने जवाब दिया कि निमित्त से नहीं होता, इसकी विशेष दृढ़ता के लिये हम जाते हैं। हमारी दृढ़ता करने के लिये जाते हैं। निमित्त से नहीं होता। आहाहा! निमित्त से पर में कुछ नहीं होता, क्योंकि निमित्त की पर्याय और उपादान की पर्याय के बीच अन्योन्य अभाव है। आहाहा!

यह समयसार की तीसरी गाथा में कहा है। प्रत्येक द्रव्य—परमाणु हो या आत्मा या धर्मास्तिकाय, उसमें रहे हुए गुण और पर्यायरूपी धर्म; धर्म अर्थात् धारण कर रखा हुआ। धारण कर रखे हुए गुण और पर्याय, उसे वह द्रव्य स्पर्श करता है - चुम्बन करता है, परन्तु परद्रव्य की पर्याय को वह कभी चुम्बन नहीं करता। आहाहा! आत्मा भी कर्म को कभी स्पर्शा ही नहीं और कर्म आत्मा को कभी स्पर्शे नहीं। भिन्न-भिन्न द्रव्य है। आहाहा! यह गले उतरना... बहुत फेरफार। अभी तो पूरब-पश्चिम का फेरफार हो गया है। आहाहा!

सम्प्रदाय में अब यह गड़बड़ उठी न! सब कहे, व्यवहार व्रत करने से होता है। कहा, व्रत करने से बिल्कुल नहीं होता। सम्प्रदाय में गुरु कहते थे। कहा, अनुभव समझते हो तुम ? तब वे कहें कि फिर अनुभव क्या ? अर्थात् उसकी खबर नहीं होती। यह शाम को प्रतिक्रमण करना, सामायिक करना - हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं। आहाहा! आत्मा का अनुभव क्या चीज़ है... आहाहा! उस राग के किसी भी प्रकार के क्रियाकाण्ड के विकल्प से रहित ऐसा जो भगवान अन्दर विराजमान है, उसकी अन्दर में भेंट होना, उसका वेदन होना, उसका स्वाद आना, उसकी दशा निर्मल परिणति से जानने में आवे,

तब उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! कठिन बातें हैं।

यहाँ आचार्य ने कहा न? गुरु के पास अन्य प्रकार से शोध। इन सब प्रकारों के बिना। जो ऊपर यह सब प्रकार कहे, उनके बिना **अन्य प्रकार को ढूँढ़।** दो बातें की है। गुरु ऐसे होते हैं कि इस क्रिया से धर्म मनाते नहीं। ऐसे गुरु के पास जा तो वे तुझे कहेंगे कि इस क्रिया से रहित आत्मा अन्दर है, उसकी दृष्टि कर। ऐसी भाषा की है, देखा? आहाहा! **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।'** ऐसी जो क्रिया कही ध्यान की, तीर्थ सेवा की, पठन की, इन्द्रिय निरोध की, उनसे भिन्न प्रकार का गुरु तुझे कहेंगे और भिन्न प्रकार का न कहे तो वह गुरु ही नहीं है। वह तो कुगुरु है। अनादि काल के जो हैं, वे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म न मनावे परन्तु धर्म का कारण मनावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी कारण नहीं। राग-दुःख; दुःख, आनन्द का कारण? राग तो दुःख है और आत्मा का सम्यग्दर्शन, वह सुख है। राग कारण, दुःख कारण और सुख, वह कार्य - एकदम मिथ्या बात है। यह तो हमारे तो बहुत वर्षों से चलता है। पुस्तकें भी प्रकाशित हो गयीं। व्यवहार अर्थात् राग। राग अर्थात् दुःख। यह कहा न अभी 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' अनन्त बार दिगम्बर मुनि हुआ। 'ग्रीवक उपजायो...' चमड़ी उतारकर नमक छिड़क दे तो क्रोध न करे। परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना अकेली क्रिया। 'आतम ज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' ऐसे पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु वह दुःख है, आस्रव है, दुःख है। इसलिए कहा कि 'आतम ज्ञान बिन...' आतम ज्ञान के बिना लेश सुख न पायो। तब वह दुःख है। दुःख से सुख मिलेगा? शुभ करते-करते शुद्ध होगा? आहाहा! शुभ तो मैल है, जहर है। शुभ तो काला नाग जहर है। भगवान आत्मा अमृत जीवन है तो शुभराग तो जहर का जीवन है। समयसार के मोक्ष अधिकार में लिया है कि शुभभाव विषकुम्भ है, जहर का घड़ा। आहाहा! ऐसी बात।

मुमुक्षु : लोभियों के लोभ का मूल है, ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : विष का घड़ा कहा है न? विष का घड़ा कहा है न? आहाहा! शुभभाव-दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि शुभभाव, वह जहर का घड़ा है। कठिन बात है, भाई! यह तो वाड़ा में नहीं मिलती। वाड़ा में होवे तो कठिनाई पड़ जाए। आहाहा!

मुमुक्षु : ..... उसे आप जहर का घड़ा कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर का घड़ा ही है। आत्मा अमृत का पिण्ड है। आत्मा / जीव का जीवन, अमृत का जीवन, वह जीव का जीवन है। राग का जीवन, वह जहर का जीवन है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! सब आ गया है। पुस्तक में प्रकाशित हो गया है। बहुत ठेठ से - पहले से...

मुमुक्षु : कठोर रेच (विरेचन) की आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर रेच यह है। कठोर यह रेच है। परन्तु लोगों को बाहर से रुचि हटती नहीं और इस प्रकार का पोषण ही पूरे दिन दिया हो और उस प्रकार का पोषण देकर... तुम दीक्षा लो, तुम्हारा कल्याण होगा। दीक्षा में पंच महाव्रत है। पंच महाव्रत से ऐसा होगा। आहाहा! वापस उसके लिये बनाया हुआ आहार ले या उसके लिये पानी (प्रासुक) किया हो, वह ले तो एक पानी की बूँद में असंख्य जीव। वह पानी ले, उसे व्यवहार व्रत भी कहाँ है? आहाहा! धर्म तो कहाँ है? परन्तु व्यवहार जो अज्ञान का व्यवहार (भी नहीं है)। उसके लिये बनाया हुआ आहार-पानी ले। दिगम्बर साधु भी उनके लिये बनाया हुआ चौका करके ले।

मुमुक्षु : मन्दिर में जाकर चौका करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है या नहीं? दिगम्बर साधु को भी उसके लिये चौका, उसके लिये सब बनावे। यहाँ किसी की दरकार नहीं है। यहाँ तो सत्य है, वह सत्य है। तीन लोक के नाथ सीमन्धरस्वामी का फरमान है, वह यह फरमान है। उसमें दुनिया को ठीक लगे, न लगे, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। संख्या के साथ सम्बन्ध नहीं कि इसमें संख्या अधिक होगी या कम होगी। आहाहा!

यहाँ बहुत सरस कहा है कि ऐसा जो करे, उससे तुझे आत्मा का कुछ फल नहीं है। **(आत्मा की) सिद्धि नहीं है; इसलिए, हे भाई! तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।'** जो गुरु यह न कहे और इससे अन्य कहे, उसके पास जा। जो गुरु तुझे व्रत और नियम और तप से कल्याण मनावे, उनके पास मत जा। आहाहा! है इसमें? **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य...** ऊपर जितने क्रियाकाण्ड कहे, उससे अन्य प्रकार से खोज। गुरु तुझे अन्य प्रकार की बात करेंगे। वे गुरु।

आत्मावलोकन पुस्तक है, उसमें तो यहाँ तक कहा है कि मुनि है, वह वीतरागता का ही उपदेश करे। मुहु.. मुहु.. ऐसा शब्द है। बारम्बार वीतराग... वीतराग... वीतराग... राग से बिल्कुल लाभ नहीं। वीतराग आत्मा वीतराग है, उसके आश्रय से वीतरागताा होगी और वीतरागता के आश्रय से वीतरागता प्राप्त होगी। जैनधर्म वीतरागभाव है। जैनधर्म कोई पक्ष / पन्थ नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन लगे। मूल यह प्रथा ही पूरी छूट गयी है।

यह बात तो कही नहीं थी? १९६९ के वर्ष में संवत् १९६९ दीक्षा लेने से पहले। हमने अभी दुकान छोड़ी और मैं तो दीक्षा लेने आया। मुझे कोई बहुत लम्बी खबर नहीं। थोड़ा अभ्यास किया। यह दशवैकालिक के आठ अध्ययन मुखाग्र किये। फिर एक दूसरे गुरु मिले गुलाबचन्दजी गाँधी। बोटाद में। उन्होंने ऐसा कहा कि साधु के लिये उपाश्रय बनावे तो उसे प्रयोग करे तो साधु नहीं। अरे! यह क्या? ऐसी बात तो हमने कभी सुनी नहीं। साधु के लिये उपाश्रय बनाया हो, मकान (बनाया हो उसे) प्रयोग करे, वह साधु नहीं। यह प्रश्न मैंने मेरे गुरु को किया। सम्प्रदाय के गुरु को। दीक्षा से पहले, हों! अभी।

प्रश्न किया कि महाराज! मकान साधु के लिये प्रयोग करे तो वह साधु है? या साधु को दोष लगता है? तब उन्होंने (जवाब) जरा ढीला दिया। तुम्हारा भाई खुशालभाई है। उन्होंने तुम्हारे लिये मकान बनाया और तुम प्रयोग करो तो उसमें क्या? परन्तु वह प्रयोग करे, वहाँ अनुमोदन है। नौकोटि में करना, कराना, अनुमोदन, मन, वचन और काया। नौ कोटि में यह एक कोटि टूटी तो नौ टूट गयी। एक भी कोटि का प्रत्याख्यान नहीं रहा। यह तो १९६९ के वर्ष। दीक्षा लेने से पहले प्रश्न किया था। ऐसा का ऐसा कहा, दीक्षा ले ले। क्या है यह? ऐसा जवाब दिया। वे मानो कि मैं ऐसा कहूँगा तो फिर दीक्षा नहीं लेगा। और मैंने कहा, यह भद्रिक है। अभी तो इसमें अब दीक्षा लो। फिर और बात। छोड़ देने की बात बाद में। आहाहा! उपाश्रय-मकान उनके लिये बनाया हो और प्रयोग करे तो भी हिंसा का भागी हिंसा करनेवाला वह है। वह साधु हिंसक है। आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि **तू गुरुओं द्वारा...** आहाहा! यह जो क्रियाकाण्डा कहा, **उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** ऐसा कहने में (ऐसा कहना है) कि जो गुरु इससे अन्य कहते हों, उनके पास सुन। ऐसा कहा न? **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** आहाहा! वे गुरु ऐसे चाहिए कि जो राग से, क्रिया से धर्म नहीं मनावे। राग से, क्रिया से, धर्म मनावे

तो मिथ्यादृष्टि कुगुरु है। इसलिए राग से धर्म न मनावे, ऐसी चीज़ जिनके पास है, उनके पास जा, तुझे अन्य प्रकार से बतायेंगे। अन्य प्रकार आया न? जो क्रियाकाण्ड है, उससे अन्य प्रकार से बतायेंगे। इसलिए अन्य प्रकार से उन सच्चे गुरु (के पास से) तुझे सत्य मिलेगा। आहाहा! अब ऐसे पुराने लोगों ने कुछ निवृत्ति भी न की हो। निर्णय नहीं। जिस वाड़ा में जन्मे, उसी और उसी में रहे तथा वह कुछ थोड़ा-बहुत जाना हो। यात्रा, भगवान की पूजा करने जाए, एकाध सामायिक करे, माला गिने। हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। वह तो सब बन्धन है, संसार है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! मार्ग बहुत अलग प्रकार का, बापू! आहाहा!

'प्रभुता प्रभु तारि तो खरी'। यह हमारी पाठशाला में आता था। ७५ वर्ष पहले की बात है। 'दलपतराय कदढा' 'कवि दलपतराय डाह्याभाई' उन्होंने गायन बनाया कि 'प्रभुता प्रभु तारि तो खरी मुज रो, मुज रोग ले हरि।' संसार का रोग हर ले तो तेरी प्रभुता खरी है। दलपतराय डाह्याभाई की कविता पहले पाठशाला में चलती थी। ७५ वर्ष पहले की बात है। मूल तो उसमें से सार-सार खोज लेते थे। वह तो कहते प्रभु अर्थात् कोई ईश्वर। मैं कहूँ, प्रभु अर्थात् यह (आत्मा) 'प्रभुता प्रभु तारि तो खरी मुज रो, मुज रोग — अज्ञान ले हरि...।' कठिन लगे।

तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य... इसमें दो-तीन सिद्धान्त (लिये हैं)। एक तो गुरु उसे कहते हैं कि जो ऊपर कहा, उससे अन्य कहने की बात हो और अन्य कहता हो, वह गुरु। ऊपर कहा तद्नुसार कहे तो वह गुरु नहीं। आहाहा! यह ऐसे सिद्धान्त इसमें से निकलते हैं। न्याय-लॉजिक से कुछ विचार करेगा या नहीं? आहाहा! **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** ऐसा कहकर तो यह बात की है कि गुरु उसे कहते हैं कि जो क्रियाकाण्ड से धर्म नहीं मनावे। आत्मा का अनुभव करे, उससे धर्म मनावे, उसे गुरु कहते हैं और वह गुरु ऐसी क्रियाकाण्ड की बात नहीं करे। वह आत्मा की करेगा। ऐसे गुरु के पास जा और वह तुझे धर्म बतायेगा। आहाहा! शास्त्र के अर्थ भी कठिन है, बापू! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

(संवत्) १९६९ में बड़ी चर्चा चली थी। साधु के लिये बनाया हो और ले, तो कौन सी कोटि टूटेगी? कहा। हमारे गुरु के पास जाते, वह तो बहुत कषायवाले। ऐई! ऐसा किसने कहा? इसे ऐसा किसने कहा? गुलाबचन्दजी निन्दा की। गुलाबचन्दजी ने कहा,

गुलाबचन्द गाँधी। भाई! चाहे जिसने कहा यह क्या है, इस बात का न्याय करो न! साधु के लिये उपाश्रय बनाया हो, रहने का मकान बनाया हो और उसे साधु प्रयोग करे। इसी तरह साधु के लिये आहार बनाया, पानी बनाया, एक पानी की बूँद में असंख्य जीव, वह दस सेर पानी बनाया (गर्म किया) और उसे साधु ले, वह साधु कहलायेगा? आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, भाई! पालीताणा धर्मशाला एक बनायी है। पहले जाते थे। साधु के लिये आहार-पानी बने। पहले जाते थे, इस ओर है। पूरी धर्मशाला ही साधु के लिये। अर..र..र..! ऐसी स्थिति! प्रभु! प्रभु! क्या करे? भाई! कोई शरण नहीं है। ऐसे समय दूसरे तुझे माननेवाले कोई लाखोंपति-करोड़पति मिले, वे मरते हुए तुझे मिथ्यात्व से मार डालेंगे। आहाहा! मरते हुए मिथ्याश्रद्धा से दुर्गति होगी। आहाहा! असाध्य हो जाएगा, प्रभु! तुझे आत्मा का साध्य नहीं रहेगा कि मैं चैतन्य हूँ। क्योंकि विपरीत श्रद्धा सेवन की है। इसलिए तेरा साध्य नहीं रहेगा। अभी असाध्य है। मिथ्यात्व की दृष्टि सेवन करता है, वह वस्तु से असाध्य है। उस समय शरीर से असाध्य हो जाएगा। आहाहा! इस भाषा में बात की है न!

हे भाई! इससे कुछ लाभ नहीं। इसलिए **हे भाई! तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** आहाहा! यह तो हजारों वर्ष पहले की गाथा है। कुन्दकुन्दाचार्य की दो हजार वर्ष पहले की गाथा है। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह श्लोक बनाया है। फिर टीका मुनि ने बनायी। हजार वर्ष हुए, पद्मप्रभमलधारिदेव, यह मुनि। समयसार की टीका अमृतचन्द्राचार्य और इसकी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव ने बनायी है। महामुनि हैं। आहाहा! आनन्द में झूलते। छठवें-सातवें गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनन्द में (झूलते थे)। मुनि तो उसे कहते हैं, सातवाँ गुणस्थान पहले आता है। मुनि को सातवाँ पहले आता है। चौथे से, पाँचवें से दीक्षा ले, तब पहले ध्यान में सातवाँ आता है। फिर वहाँ से विकल्प उठे तो छठवाँ आता है। आहाहा! फिर छठे-सातवें में, छठे-सातवें में हजारों बार जिन्दगी में रहते हैं। उनका नाम मुनि है। बाकी सब कोई मुनि-बुनि है नहीं। आहाहा! परन्तु यह खबर न हो और मुनि को माने, क्या करे? आहाहा! वेश धारण किया हो। जय महाराज! ऐसे के ऐसे अनादि से अज्ञान किये हैं। आहाहा! इस शब्द में बहुत भरा है।

तू गुरुओं द्वारा... आहाहा! अर्थात् कि गुरु यह बात नहीं करे। ऐसा इसका अर्थ

हुआ न ? यह व्रत, तप, क्रिया, पठन, जप से कल्याण होगा, यह बात नहीं करते। **तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़।** यह गुरु अन्य प्रकार से कहेंगे और तू भी अन्य प्रकार से अन्दर खोज। आत्मा को राग से भिन्न अन्य प्रकार से खोज। आहाहा!

श्लोक-२०२

और (इस १२४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(द्रुतविलंबित)

अनशनादितपश्चरणैः फलं समतया रहितस्य यतेर्न हि।
तत इदं निजतत्त्वमनाकुलं भज मुने समताकुलमन्दिरम्।।२०२।।

(वीरछन्द)

अनशनादि तप से नहिं कुछ भी, समताहीन यति को फल।
अतः मुनि! निज तत्त्व निराकुल समता कुल मन्दिर को भज॥२०२॥

श्लोकार्थ : वास्तव में समता रहित यति को अनशनादि तपश्चरणों से फल नहीं है; इसलिए, हे मुनि! समता का *कुलमन्दिर ऐसा जो यह अनाकुल निज तत्त्व उसे भज॥२०२॥

श्लोक- २०२ पर प्रवचन

और (इस १२४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

अनशनादितपश्चरणैः फलं समतया रहितस्य यतेर्न हि।
तत इदं निजतत्त्वमनाकुलं भज मुने समताकुलमन्दिरम्।।२०२।।

* कुलमन्दिर=(१) उत्तम घर; (२) वंशपरम्परा का घर।

आहाहा! गाथा तो अमृत समान है।

श्लोकार्थ : वास्तव में समता रहित... समता अर्थात् आनन्द का सागर आत्मा, उसका अनुभव, वह समता है। बाकी सब असमता। महाव्रतादि सब असमता है। आहाहा! **वास्तव में समता रहित...** सम्यग्दर्शन की और सम्यग्ज्ञान की जो समता। आत्मा में वीतरागता और समता भरी है, उससे प्रगट की हुई समता। उस **समता रहित यति को अनशनादि तपश्चरणों से फल नहीं है;...** उसे तपश्चरण आदि से धर्म का फल नहीं है। आहाहा! संसार का फल है। भटकने का फल मिलेगा। अरे! प्रभु! कोई शरण नहीं, कोई सहायक नहीं। आहाहा! देह में रोग आया हो, फिर अकेला तड़फता है। आहाहा! स्वयं आत्मकल्याण तो किया नहीं। फिर अकेला तड़फे। तड़फकर मरकर चला जाए। कोई अकस्मात् मर जाए। कोई तड़फे नहीं और फिर फूँ... होकर मर जाए। आहाहा! अरे! ऐसा समय मिला। अनन्त काल में मनुष्य और जैन परमेश्वर की वाणी मिली। उसमें यदि इस प्रकार से नहीं समझे (और) दूसरे प्रकार से समझेगा तो मर जाएगा, भाई! वीतरागमार्ग में किसी की कुछ सिफारिश नहीं चलती। आहाहा! तीन लोक का नाथ विराजता है, वहाँ यह बात चलती है। बीस तीर्थंकर विराजते हैं, लाखों केवली विराजते हैं। यही बात वहाँ चलती है। आहाहा! तीन काल में दूसरा मार्ग नहीं। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ' आहाहा!

यहाँ कहते हैं **वास्तव में समता...** अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान **रहित यति को अनशनादि तपश्चरणों से...** अनशन और सभी तपस्यायें करे। रस छोड़े, अमुक करे... आहाहा! बारह प्रकार की तपस्या करे, अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग... कायक्लेश... अभ्यन्तर जो तप हैं, वे भी बाह्य हैं। विनय, वैयावृत्त्य... यह भी बाहर की बात है। विनय करना, वह शुभभाव है। वैयावृत्त्य करना, वह शुभभाव है। आहाहा! अभ्यन्तर कहा है, वह तो क्या कि अन्दर का भाव है इसलिए (कहा है)। बाकी है तो बारह ही तप शुभभाव। आहाहा! अन्दर ध्यान भी आ गया न? ध्यान आ गया। आहाहा!

यह प्रभु अन्दर सब क्रियाकाण्ड के क्लेश से भिन्न विराजता है। यह क्रियाकाण्ड तो क्लेश है, दुःख है। उसे किसके साथ दुःख को मिलान करना? आनन्दस्वरूप भगवान है, उसकी तो खबर नहीं तो यह राग दुःख है, उसे किसके साथ मिलान करे? एक ज्वार

अच्छी हो तो दूसरे ज्वार के साथ तुलना करे कि इसकी अपेक्षा यह है। इसी प्रकार दु:ख को मिलावे किसके साथ ? आनन्द की तो खबर नहीं होती। जो करता है, वह ठीक करता है ऐसे अन्ध-अन्ध चला जाता है। आहाहा!

समता रहित यति को... समता अर्थात् यह, हों! वापस समस्त अर्थात् राग मन्द करके समता (करे), वह नहीं। वीतरागी परिणति, वह समता। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग, वे तीनों वीतराग परिणति हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों वीतराग परिणति हैं। उस वीतराग परिणति की यहाँ बात कहते हैं। आहाहा! समतारहित—उस वीतराग परिणतिरहित यति को, साधु नाम धरावे। **अनशनादि तपश्चरणों से...** अनशन आदि तपस्या करे, देखो! अनशनादि सब कहा, हों! अनशन, ऊनोदरी, रस छोड़े, एक रस खाये, दो रस न ले, अमुक न ले, अमुक न ले, यह सब बाह्य क्रिया है। उन **तपश्चरणों से फल नहीं है;...** धर्म का फल नहीं है। आहाहा!

इसलिए, हे मुनि! समता का कुलमन्दिर... आहाहा! समता का कुलमन्दिर **(१) उत्तम घर; (२) वंशपरम्परा का घर।** आहाहा! है न ? **हे मुनि! समता का कुलमन्दिर ऐसा जो यह अनाकुल...** अनाकुल अर्थात् आनन्द निजतत्त्व। **अनाकुल निज तत्त्व...** आहाहा! **उसे भज।** आहाहा! भगवान अनाकुल तत्त्व है। क्रियाकाण्ड का जितना विकल्प उठे, वह सब आकुलता और दु:ख है। आहाहा! अनाकुल ऐसा जो आत्मतत्त्व, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर जो भगवान, उसे भज। आहाहा! उसकी सेवा कर तो तुझे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा और उस अतीन्द्रिय आनन्द का धर्म, वह मुक्ति देगा। आहाहा!

समता का कुलमन्दिर ऐसा जो यह अनाकुल निज तत्त्व... अनाकुल निज तत्त्व। क्रियाकाण्ड वह सब निज तत्त्व नहीं है। आहाहा! निज तत्त्व... **अनाकुल निज तत्त्व...** आनन्दस्वरूप ऐसा निज तत्त्व। उसका अर्थ कि जितना क्रियाकाण्ड किया, वह सब दु:खरूप है। पंच महाव्रत से लेकर अभव्य अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। अनन्त बार ऐसा क्रियाकाण्ड करके शुक्ललेश्या (की है)। शुक्ललेश्या... नौवें ग्रैवेयक गया, शुक्ललेश्या से जाता है। वह भी दु:ख है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, **अनाकुल निज तत्त्व, उसे भज।** भगवान को भज। अन्दर आनन्द के नाथ को भज। इस आकुलता को छोड़ दे। आहाहा! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)